शान्ति-साधना
प्रकाशक—
चन्द्रकुमार शास्त्री

प्रकाशक—

चन्द्रकुमार शास्त्री

एम० ए०, एल एल० बी०,

मुज़फ़्फ़रनगर

प्रथमावृत्ति } अगस्त १९३५ { मूल्य नित्य पाठ

दो शब्द

मनुष्य के हृदय में शुद्ध पवित्र भावों को जगाने के लिये पूजा, प्रार्थना, स्तुति, भावना और उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन एवं सतत मनन आवश्यक होता है और विशेषतया उस समय जब कि इष्टवियोग तथा इसी प्रकार के अन्य कष्टों का सामना करना पड़ता है और हृदय नाना प्रकार की उलझनों में पड़ जाता है, आत्मा को शान्ति पहुंचाने और मन को स्थिर रखने के लिये ऐसे अवलम्बनों की जरूरत होती है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर जैन स्त्री समाज मुज़फ़्फ़र-नगर ने श्रीमती शरबती देवी द्वारा इस संग्रह को इकट्ठा कर प्रकाशित करने की प्रेरणा की है और समस्त व्यय का भार अपने ऊपर उठाया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि प्रेम और श्रद्धा के साथ कोई भी मनुष्य इस छोटी सी पुस्तिका को ध्यान पूर्वक पढ़ेगा तो उसे निःसन्देह शान्ति मिलेगी और अचानक आने वाली आपत्तियों का वीरता के साथ सामना करने की शक्ति प्राप्त होगी। मेरी नम्र प्रार्थना है कि सभी स्त्री पुरुष इस संग्रह को एक बार प्रति दिन अवश्य पढ़ा करें।

मुज़फ़्फ़रनगर
ता० १५-८-३५

चन्द्रकुमार शास्त्री

मेरी भावना

(राष्ट्रीय नित्यपाठ)

१

जिस ने राग-द्वेष-कामादिक
जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का-
निस्पृह हो उपदेश दिया।

बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा
या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह
चित्त उसी में लीन रहो ॥

२

विषयों की आशा नहिं जिनके,
साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधन में जो
निश दिन तत्पर रहते हैं।

स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या
बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के
दुख-समूह को हरते हैं ॥

३

रहे सदा सत्संग उन्हीं का,
ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या में यह
चित्त सदा अनुरक्त रहे।

नहीं सताऊं किसी जीव को,
झूठ कभी नहिं कहा करूं,
परधन-वनिता* पर न लुभाऊं,
संतोषामृत पिया करूं ॥

नोटः—*स्त्रियां वनिता की जगह भर्ता पढ़ें।

४

अहंकार का भाव न रक्खूं,
नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढ़ती को
कभी न ईर्षा-भाव धरूं।

रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल—सत्य—व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में
औरों का उपकार करूं॥

५

मैत्री भाव जगत में मेरा
सब जीवों से नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे
उर से करुणा स्रोत बहे।

दुर्जन—क्रूर—कुमार्गरतों पर
क्षोभ नहीं मुझ को आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर,
ऐसी परिणति हो जावे॥

६

गुणी जनों को देख हृदय में
मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा
करके यह मन सुख पावे।

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं,
द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित,
दृष्टि न दोषों पर जावे॥

७

कोई बुरा कहो या अच्छा,
लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊं या
मृत्यु आज ही आजावे।

अथवा कोई कैसा ही भय
या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्ग से मेरा
कभी न पद डिगने पावे॥

८

हो कर सुख में मग्न न फूले,
दुख में कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-स्मशान-भयानक-
अटवी से नहिं भय खावे।

रहे अडोल-अकम्प निरन्तर,
यह मन, दृढ़तर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्टयोग में,
सहन शीलता दिखलावे ॥

९

सुखी रहें सब जीव जगत के,
कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड़ जग
नित्य नये मंगल गावे।

घर घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना,
मनुज-जन्मफल सब पावें ॥

१०

ईति-भीति व्यापे नहिं जग में
वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ट हो कर राजा भी
न्याय प्रजा का किया करे।

रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले,
प्रजा शांति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत में,
फैल सर्वहित किया करे॥

११

फैले प्रेम परस्पर जग में,
मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं,
कोई मुख से कहा करे।

बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से
देशोन्नति-रत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से
सब दुख-संकट सहा करें॥

नित्य भावना

१

भावना दिन रात मेरी,
सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का,
व्यवहार घर घर बार हो॥

२

धर्म का परचार हो,
और देश का उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ,
भारत चमन गुलज़ार हो॥

३

रोशनी से ज्ञान का
संसार में परकाश हो।
धर्म की तलवार से
हिंसा का सत्यानाश हो॥

४

शान्ति अरु आनन्द का
हर एक घर में बास हो।
वीर बाणी पर सभी
संसार का विश्वास हो॥

५

रोग और भय शोक होवे,
दूर सब परमात्मा।
कर सकें कल्याण 'ज्योति',
सब जगत की आत्मा॥

बारह भावना

१

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥

२

दल बल देई देवता,
मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को,
कोऊ न राखन हार॥

३

दाम विना निरधन दुखी,
तृष्णा—वश धनवान।
कहूं न सुख संसार में,
सब जग देख्यो छान॥

४

आप अकेला अवतरै,
मरे अकेला होय।
यों कबहूं या जीव को,
साथी सगा न कोय॥

५

जहां देह अपनी नहीं,
तहां, न अपना कोय।
घर संपति पर प्रगट ये,
पर हैं परिजन लोय॥

६

दिपै चाम चादर मढ़ी,
हाड़—पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में,
और नहीं घिन गेह॥

७

मोह नींद के जोर,
जगवासी घूमै सदा।
कर्म चोर चहुं ओर,
सरवस लूटैं सुधि नहीं॥

८

सतगुरु देय जगाय,
मोह नींद जब उपसमै।
तब कुछ बने उपाय,
कर्म चोर आवत रुकैं॥

९

ज्ञान-दीप तप-तेल भर,
घर शोधै भ्रम छोर।
याविध बिन निकसै नहीं,
पैठे पूरब चोर॥

पंचमहाव्रत संचरन,
समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रियविजय,
धार निर्जरा सार॥

१०

चौदह राजु उतंग नभ,
लोक पुरुषसंठान।
तामें जीव अनादितें,
भरमत हैं बिन ज्ञान॥

११

जांचे सुरतरु देय सुख,
चिंतत चिंतारैन ।
बिन जांचे बिन चिन्तये,
धर्म सकल सुखदैन ॥

१२

धन कन कंचन राजसुख,
सबहिं सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसार में
एक यथारथ ज्ञान ॥

वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करे, धर्म बिसारे नाहिं॥

योगी रासा

इस विधि राज करे नर नायक,
भोगे पुण्य विशाले।
सुख सागर में रमत निरन्तर,
जात न जाने काले॥

एक दिवस शुभ कर्म संयोगे,
क्षेमङ्कर मुनिवन्दे।
देख श्री गुरू के पद पंकज,
लोचन अलि आनन्दे॥

तीन प्रदक्षिणा दे, सिर नायो,
कर पूजा थुति कीनो।
साधु समीप विनय कर बैठो,
चरणों में दिठ दीनो॥

गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि,
सुन राजा वैरागे।
राज, रमा, वनतादिक, जे रस,
सो सब नीरस लागे॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि,
लगत भ्रम बुधि भागी।
भव तन भोग स्वरूप विचारो,
परम धर्म अनुरागी॥

या संसार महावन भीतर,
भरमत ओर न आवे।
जामन मरण जरा दो दाहें,
जीव महा दुख पावे॥

कबहूं कि जाय नरक थिति भुंजे,
छेदन भेदन भारी।
कबहूं कि पशु पर्याय धरे तहां,
वध बन्धन भयकारी॥

सुरगति में पर सम्पत देखे,
राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपति मय,
सर्व सुखी नहीं कोई॥

कोई इष्ट वियोगी विलखे,
कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री दीखे,
कोई तन का रोगी॥

किस ही घर कलिहारी नारी,
कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहिर दीखे
किस ही उर दुचिताई॥

कोई पुत्र बिना नित झूरे,
होइ मरे तब रोवे।
खोटी सन्तति से दुख उपजे,
क्यों प्राणी सुख सोवे॥

पुण्य उदय जिन के तिनके भी,
नहीं सदा सुख साता।
यह जग वास यथारथ नाहीं,
सब ही हैं दुःख दाता॥

जो संसार विषै सुख होता,
तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते,
संयम सो अनुरागे॥

देह अपावन अथिर घिनावणी,
इस में सार न कोई।
सागर के जल से शुचि कीजे,
तो भी शुद्ध न होई॥

सप्त कुधातु भरी मल मूतर,
चर्म लपेटी सोहै।
अन्दर देखत या सम जग में,
और अपावन को है॥

नव मल द्वार स्रवें निशिवासर,
नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहां,
कौन सुधी सुख पावे॥

पोषत तो दुख दोष करे अति,
सोखत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर,
मूरख प्रीति बढ़ावे॥

राचन योग्य स्वरूप न याको,
विरचन योग्य सही है।
यह तन पाय महातप कीजे,
या में सार यही है॥

भोग बुरे भव रोग बढ़ावें,
वैरी हैं जग जी के।
वे रस होय विपाक समय अति,
सेवन लागें नीके॥

वज्र, अग्नि, विष से, विषधर से,
ये अधिके दुखःदाई।
धर्म रतन के चोर चपल अति,
दुरगति पन्थ सहाई॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी
भोग भले कर जाने।
जो कोई जन खाय धतूरा,
सो सब कंचन माने॥

ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर,
मन वांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके,
लहर लोभ विष लावे॥

मैं चक्रीपद पाय निरन्तर,
भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनक भये नहीं पूरण,
भोग मनोरथ मेरे॥

राज समाज महा अघ कारण,
वैर बढ़ावन हारा।
वेश्यासम लक्ष्मी अति चंचल,
याका कौन पतियारा॥

मोह महा रिपु वैर विचारो,
जग जिय संकट डारे।
घर कारागृह वनिता बेड़ी,
परजन जन रखवारे॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप,
ये जिय के हितकारी।
येही सार असार और सब,
यह चक्री चितधारी॥

छोड़े चौदह रतन नवो निधि,
और छोड़े संग साथी।
कोड़ अठारह घोड़े छोडे,
चौरासी लख हाथी॥

इत्यादी सम्पति बहुतेरी,
जीरण तृण सम त्यागी।
नीति विचारि नियोगी सुत को,
राज दियो बड़ भागी॥

होय निःशल्य अनेक नृपति संग,
भूषण वसन उतारे।
श्रीगुरु चरण धरी जिन मुद्रा,
पंच महा व्रत धारे॥

धनि यहसमझ सुबुद्धि जगोत्तम,
धनि यह धीरज धारी।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन,
तिन पद धोक हमारी॥

परिग्रह पोट उतार सब,
लीनो चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये,
वज्रनाभि निग्रंथ॥

महावीर-सन्देश

यही है महावीर-सन्देश।
विपुलाचलपर दिया गया जो—
प्रमुख धर्म-उपदेश ॥ यही० ॥

१

सब जीवों को तुम अपनाओ,
हर उनके दुख-क्लेश।
असद्भाव रक्खो न किसीसे,
हो अरि क्यों न विशेष ॥ यही०

२

वैरीका उद्धार श्रेष्ठ है,
कीजे सविधि-विशेष ।
वैर छुटे, उपजे मति जिससे,
वही यत्न यत्नेश ॥ यही०

३

घृणा पाप से हो, पापी से–
नहीं कभी लव-लेश ।
भूल सुझाकर प्रेम-मार्ग से,
करो उसे पुण्येश ॥ यही०

४

तज एकान्त-कदाग्रह-दुर्गुण,
बनो उदार विशेष ।
रह प्रसन्नचित्त सदा, करो तुम–
मनन तत्त्व-उपदेश ॥ यही०

५

जीतो राग-द्वेष-भय-इन्द्रिय-
मोह-कषाय अशेष ।
धरो धैर्य सम-चित्त रहो औ'
सुख-दुखमें सविशेष ॥ यही०

६

अहंकार-ममकार तजो, जो–
अवनतिकार विशेष।
तप-संयममें रत हो, त्यागो–
तृष्णाभाव अशेष ॥ यही०

७

'वीर' उपासक बनो सत्यके,
तज मिथ्याऽभिनिवेश* ।
विपदाओं से मत घबराओ,
धरो न कोपाऽऽवेश ॥ यही०

८

संज्ञानी-संदृष्टि बनो, औ
तजो भाव संक्लेश।
सदाचार† पालो दृढ़ होकर,
रहे प्रमाद न लेश ॥ यही०

---

*असत्याग्रह, मिथ्या परिणति, मिथ्यात्व।

†अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच व्रतों के अनुष्ठान को अथवा हिंसादिक पापों, कन्याविक्रयादि अन्यायों और मद्य-मांसादिक अभक्ष्यों के त्याग को 'सदाचार' कहते हैं।

९

सादा रहन-सहन-भोजन हो,
सादा भूषा-वेष ।
विश्व-प्रेम जागृत कर उरमें,
करो कर्म निःशेष ॥ यही०

१०

हो सबका कल्याण, भावना
ऐसी रहे हमेश ।
दया-लोकसेवा-रत चित हो,
और न कुछ आदेश ॥ यही०

११

इस पर चलने से ही होगा-
विकसित स्वात्म-प्रदेश ।
आत्म-ज्योति जागेगी ऐसे-
जैसे उदित दिनेश ॥ यही०

मुद्रक—

रामस्वरूप शर्म्मा

मेरठ प्रिंटिंग वर्क्स,

जनरल फाइन आर्ट प्रिंटर्स

वैस्टर्न कचहरी रोड, मेरठ।